ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 184-189

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- II, Issues-24, YEAR- April-June-2022

लोक संस्कृति में लोक कला धरोहर के विभिन्न रूप

1. श्रीमती आंचल सिंह
2. डॉ0 अलका तिवारी

1. असि0 प्रोफेसर– चित्रकला विभाग, आई.एन.एम. पी.जी. कॉलेज, 2. एसो0 प्रोफेसर– चित्रकला विभाग, एन0 ए0 एस0 कालेज, मेरठ & समन्वयक– ललित कला विभाग, चौ0 चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ (उ0प्र0) भारत

Received-20.06.2022, Revised-25.06.2022, Accepted-29.06.2022 E-mail: aanchalveer28@gmail.com

सारांशः– *भारतीय संस्कृति विश्व की सर्वाधिक प्राचीनतम एवं समृद्ध संस्कृति है। अन्य देशों की संस्कृतियाँ तो समय के साथ नष्ट होती रही है, किन्तु भारतीय संस्कृति आदि काल से ही अपने परम्परागत अस्तित्व के साथ निरन्तर बनी हुई है। इसने अन्य संस्कृतियों के गुणों को अपने में समाहित तो किया, किन्तु अपने अस्तित्व के मूल को सुरक्षित रखा। हम जानते है कि किसी देश के विकास में वहाँ की कला संस्कृति का महत्वपूर्ण योगदान होता है। भारतीय कला परम्परिक और धार्मिक दोनों हैं। जो समाज का अविभाज्य अंग है। भारतीय लोक कला सम्पूर्ण समाज की धार्मिक भावनाओं का चित्रित इतिहास है, जो मानवता की अमूर्त संस्कृतिक विरासत के रूप में जानी जाती हैं।*

कुंजीभूत शब्द– लोक कला, संस्कृति, संस्कार, धार्मिक, भारतीय संस्कृति, सर्वाधिक प्राचीनतम, परम्परागत अस्तित्व।

भारतीय संस्कृति और कला का आपसी रिश्ता काफी गहरा है। कला के माध्यम से ही संस्कृति हमारे जीवन में अभिव्यक्ति पाती हैं। मध्य प्रदेश के भीमबेटका में पाये गये शैलचित्र, नर्मदा घाटी में की गई खुदाई तथा अन्य पुरातत्वीक प्रभावों से यह सिद्ध हो चुका है कि भारत भूमि आदिमानव की प्राचीनत्म कर्मभूमि रही है। हजारों वर्षो के बाद भी भारतीय संस्कृति अपने मूल स्वरूप में जीवित है। भारत अनेक धर्मो, सम्प्रदायों, मतों और पृथक आस्थाओं एवं विश्वासों का देश है, फिर भी सांस्कृतिक रूप में एक इकाई के रूप में इसका अस्तित्व प्राचीनकाल से बना हुआ है।

भारतीय कला धर्म से प्रेरित है इसे नकारा भी नहीं जा सकता है। पहले कलाकार धर्माचार्य के निर्देशानुसार कार्य करते रहे होगें, पर स्वयं की अभिव्यक्ति के समय उन्हें जो जैसा दिखायी दिया उसे वैसा ही चित्रित किया। कला के माध्यम से ही पावन दृष्टि को अभिव्यक्त किया गया, जो भौतिक संसार के पीछे छिपे दैव तत्वों से हमें हमेशा अवगत कराती रही हैं। इसी क्रम में जीवन के दैनिक क्रिया –कलापों के बीच उसके पूजा–पाठ, उत्सव, पर्व त्यौहार, शादी–विवाद या अन्य घटनाओं से विभिन्न लोक कलाओं से घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। इसलिए भारतीय कला की चर्चा तब तक अपूर्ण मानी जायेगी, जब तक की उसमें लोक कला के पक्षों को शामिल न किया जाये।

वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों में विकास एवं परिवर्तित मूल्यों को अपनाते हुए आधुनिक भारतीय समाज धार्मिक संस्कारों से अपरिचित सा होता जा रहा है, जबकि अपनी संस्कृति की गरिमा को सुरक्षित रखने तथा विश्व स्तर पर अपनी पहचान बनाये रखने के लिए अपने स्वर्णिम अतीत को जानना अत्यन्त आवश्यक है। अतः पूर्व में प्रचलित धार्मिक संस्कारों संबंधी ज्ञान को लोक कला संस्कृति के माध्यम से आज भी संकलित सुरक्षित एवं जीवित है। वर्तमान परिदृश्य में विदेशों में भी इन धार्मिक संस्कारों के प्रति अनुराग है। बदलते परिवेश में भी भारतीय लोक कला संस्कृति के गरिमामयी धार्मिक संस्कारों ने विश्व को आकर्षित किया है।

शोध–पत्र का उद्देश्य– लोक देवी–देवता का भारतीय समाज में महत्वपूर्ण स्थान है। लोक कला संस्कृति का एक रूप हमें भावभिव्यक्तियों की शैली में भी मिलता है, जिसके द्वारा लोक मानस का मांगलिक भावना से ओत–प्रोत होना सिद्ध करता है। लोक जीवन की जैसी सरलता, नैसर्गिक अनुभूतिमयी अभिव्यंजना का चित्रण लोक कला में मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ हैं। लोक जीवन में पग–पग पर धार्मिक संस्कारों के दर्शन होते हैं। प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य भारतीय लोक कला संस्कृति में धर्म के योगदान पर प्रकाश डालना है जो वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आधुनिकता की दौड़ में हम अपनी परम्पराओं की अवहेलना करते हुए भारतीय लोक कला संस्कृति तथा धार्मिक संस्कारों से दूर होते जा रहे है। यह सत्य है कि आज हम पूर्णरूपेण उन संस्कारों का अनुपालन नहीं कर सकते, किन्तु उनमें छिपी भावनाओं को अपनाकर संक्षेप में ही सही अपनी लोक कला संस्कृति के धार्मिक संस्कारों को विलुप्त होने से बचा सकते हैं।

लोक कला संस्कृति– लोक शब्द का अर्थ बहुत व्यापक है एक ओर तो यह शब्द अपने में विश्व अथवा समाज को समेटे हुये है वही दूसरी ओर यह जन सामान्य के अर्थ का भी द्योतक है। हमारा ग्रामीण समाज लोक का महाप्राण है और ग्रामीण संस्कृति लोक का प्रतिनिधित्व करती है। वास्तव में लोक का अर्थ उस जन समाज से है जो विस्तृत रूप से पृथ्वी के भूभाग में फैला हुआ है और जिसमें सभी प्रकार के मनुष्य सम्मिलित है। वास्तव में देखा जाये तो "लोक" शब्द अपने प्रयोग के आधार पर अलग–अलग अर्थ देता है। जैसे यदि लोक के साथ कला, संस्कृति, संस्कार आदि शब्द को लगा दे तो एक दम वैसा ही दृश्य हमारी आंखों के सामने घूमने लगता है।

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- II, Issues-24, YEAR- April-June-2022

लोक कला उस नदी की धारा के समान है जो ग्रामीण संस्कृति के गर्भ से निकल कर न केवल ग्रामीण समाज को पल्लवित करती रहती है वरन् वह अपने शीतल रूप से समग्र मानव समाज को शीतलता प्रदान करती है। इन कलाओं के द्वारा ग्रामीण जन अपने जीवन की कठिनाईयों और दुःख को भूलकर कुछ समय के लिए इसमें खो जाते है। ये लोक कलाएं आज भी निरन्तर न जाने कब से एक से दूसरे हाथों में होती हुई निर्विघ्न, निर्विकार रूप में अपने सहज रूप में बह रही है। वास्तव में ये लोक कला ग्रामीण संस्कृति में चलचित्र के समान है, जिन्हें देखकर ग्रामीण रीति रिवाज, उनकी दिनचर्या उनकी आर्थिक विषमता, उनके उल्लास सभी कुछ दर्शक के सामने एक के बाद एक करके आने लगते है। यह बात और है कि अब यह कला शहरी सभ्यता से भी प्रभावित होने लगी है, परन्तु इनमें ग्रामीणता ज्यों की त्यों विद्यमान है।

लोक कला संस्कृति के चित्र ग्रामीण लोगों द्वारा अपने घर की सजावट, अपने आराध्य और रीतिरिवाजों के लिए और स्थानीय लोगों के उपयोग के लिए बनाये जाते थे। इनमें तीर्थ स्थानों पर पारम्परिक पेशेवर चित्रकारों द्वारा बनाये चित्र भी समाहित है। ये सब चित्र विभिन्न विषयों एवं शैलियों में बनाये जाते थे। हर क्षेत्र के चित्रों में स्थानीय प्रभाव को बढावा दिया। एक दूरी तक उनकी शैली और गुणवत्ता स्थानीय तौर पर मिलने वाली सामग्री पर आश्रित होती थी। इन सब गुणों से ही हमें उन्हें क्षेत्रवार लोक कला संस्कृति को पहचानने में मदद मिली है। इनमें इतनी विभिन्नतायें होते हुए भी विश्व स्तर पर 'भारतीय लोक संस्कृति' की पहचान बनाये रखी हैं।

लोक कला का इतिहास मानव जाति के अभ्युदय और विकास से संबंधित है। वैदिक काल से वर्तमान युग तक की सांस्कृतिक भावना, धारणा, परम्परा, आस्था और विचार क्रमबद्ध रूप से लोक कला के अन्तर्गत प्राप्त होता है। लोक कला मानव जाति की सौन्दर्यात्मक अनुभूति को प्रगट करता है। इस कला में स्वाभाविकता अधिक है जिससे मानव की धार्मिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक अभिव्यक्ति को बल मिलता है। आधुनिक कृत्रिमता और प्राविधिक प्रयोगों से लोक कला पूर्णतः मुक्त है, उसका एक अपना निजी संसार होता है। लोक कलाकारों को अपनी प्रविधि के ज्ञान के लिए किसी कला विद्यालय की आवश्यकता नहीं होती। स्थानीय भावना से ओत–प्रोत इस कला में शंख, स्वास्तिक, चक्र, कलश, गणेश, त्रिशूल आदि चिन्हों का प्रयोग मंगलकामना से किया जाता है। इसमें कोयला, गेरू, गोंद, वनस्पति, खड़िया, काजल आदि रंगों का निर्माण कलाकार स्वयं करता है और वह इन रंगों से मकान की भित्तियाँ, कपड़ों या कागज पर अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करता है। ये चित्र मानव जाति के सुख–समृद्धि, कल्याण एवं आनन्द की प्राप्ति हेतु चित्रित किये जाते है। यह संस्कार रूप में मनुष्य को जन्म से प्राप्त होते हैं।

भारतीय लोक संस्कृति में कोहबर लोक कलाः लोक कला सोच समझकर नहीं बनाई जाती लेकिन यह रस और आनन्द से भरपूर होती है। यह हमारे प्रतिदिन के जीवन में उन समस्त वस्तुओं के रूप में गुथी हुयी है जिनको हम अपने घरों में विभिन्न त्योहारों, उत्सवों और विवाह की रस्मों में प्रयोग करते है। प्राचीन भारतीय कला धर्म से अनुप्रमाणित है। अतः धर्म की पृष्ठभूमि में इसको प्रेरणा और रूप प्राप्त हुए है। विवाह अवसर पर परिणय मंडप और घर में यंत्र–तंत्र को प्रतीक रूप में अंकित करने के पीछे यही प्रयोजन होता है कि उस मुहर्त में पवित्र शक्ति का अधिकाधिक परिणाम विद्यमान रहे और आयोजन निर्विघ्न सम्पन्न हो जाये, किसी प्रकार का कोई अवरोध–अड़चन न आने पाये। इसी प्रकार का चित्रण कोहबर कला के अन्तर्गत किया जाता है।

'कोहबर' शब्द संस्कृत के 'कोष्ठवर' शब्द से बना है। कोष्ठवर, विवाह के उस घर को कहते है, जहाँ कुल देवता को स्थापित किया जाता है। इस स्थान पर विवाह के उपरान्त वर–वधू को कुल देवता के आशीर्वाद के लिए उनकी पूजा का विधान है और तरह–तरह से उनका मनोरंजन भी किया जाता है।

कोहबर लोक चित्रकला देश के विभिन्न प्रान्तों उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, हिमाचल प्रदेश आदि में विवाह के समय कोहबर घर की दीवारों पर बनाई जाती हैं। इससे घर की शोभा भी बढती है और इसे कराना मंगलकारी भी माना जाता है। यह चित्र वर–वधू के मिलन को और अधिक आकर्षक बनाता है। एक विवाह गीत में कोबहर लिखे जाने का वर्णन है–

काहे क मोर बाबा काहे के खोजयला दमाद
काहे क मोर बाबा 'पुतरी' लिखउला,
काहे क खोजला दमाद।

बिहार में शादी–ब्याह की चर्चा हो और कोहबर की बात न हो यह असंभव है। पौराणिक कथाओं के अनुसार सीता का जन्म मिथिला में हुआ था और उनका एक नाम मैथिली भी है। मैथिली इस क्षेत्र की मातृभाषा है। इस क्षेत्र की एक विशिष्ट कला परंपरा है जो 'मिथिला–लोक कला' के नाम से विश्वविख्यात है। मैथिली अर्थात सीता के विवाह में कोहबर चित्रण का वर्णन मिलता है–

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- II, Issues-24, YEAR- April-June-2022

कोहबरहिं आने कुअँर कुअँरि सुआसिन्ह सुख पाइकै।
अति प्रीति लौकिक रीति लागी करन मंगल गाइ कै।।

बिहार के मिथिला क्षेत्र में विवाह के अवसर पर कोहबर चित्रण की परम्परा है। विवाह के समय यहाँ बनने वाली कला को 'मधुबनी चित्रकला' के नाम से जानते हैं। मधुबनी चित्रों की रचना प्रविधि अन्य कलाओं से भिन्न है। इसमें घर के कक्ष में स्त्रियां विभिन्न मांगलिक अनुष्ठान तथा लोक रीतियों से युक्त चित्रों को बनाती है। इन चित्रों में विभिन्न देवी–देवता और जीव–जन्तुओं को बनाकर उनका आहवान किया जाता है कि वह भी विवाह में सम्मिलित हों।

मिथिलांचल के कोहबर चित्रण में अनेक प्रतीक चिन्हों का अद्भूत संयोजन है। इनके अपने उद्देश्य, विशेषताएं एवं सिद्धांत है जो की वैज्ञानिक अवधारणाओं पर आधारित हैं। घर में कोहबर का स्थान एवं दिशा निश्चित होती है। वैदिक संस्कृति में इसे अग्नेय कोण यानी दक्षिण–पूर्व दिशा को उपयुक्त माना गया है। अग्नेय कोण को कुलदेवी/देवता का स्थान भी माना जाता है। कोबहर के प्रतीक चिन्हों में सूर्य–चन्द्रमा, नवग्रह, पंचदेवता (सूर्या, अग्नि, दुर्गा, महादेव और गणेश) लटपटिया तोता (जोड़ा तोता), केला का पेड़, हाथी, कछुआ, मछली आदि का चित्रण होता है। रंग–लाल, पीला, हरा, बैंगनी आदि भरे जाते हैं।

झारखण्ड राज्य में मुख्य रूप से दो प्रकार की चित्रकारी प्रमुखता से बनाई जाती है– 'खोवार' और 'सोहराई'। कोहबर को ही यहाँ के स्थानीय लोग 'खोवार' कहते है। यहाँ कोहबर चित्रण की दो शैलियाँ प्रचलित है। पहली शैली में दीवार की पृष्ठभूमि को तैयार करने के लए काली मिट्टी का लेप हाथ या झाड़ू से लगाया जाता है। उसके सूखने पर उसके ऊपर सफेद मिट्टी का लेप लगाया जाता है। जब यह थोडा सूख जाता है तो कंघी या अंगुलियों की सहायता से उसके ऊपर चित्रकारी बनाई जाती है। जिससे काली मिट्टी की आकृतियां स्पष्ट दिखाई देने लगती है। दूसरी शैली में दीवार पर मिट्टी की सतह तैयार कर कूची या टीहनी की कोर पर कपड़ा बांध कर चित्रण किया जाता है। कोहबर चित्रकला में नैसर्गिक रंगों का प्रयोग होता है। सामान्यतः सफेद, गेरू, काला, पीला, हरा आदि रंगों का प्रयोग होता है।

हिमाचल प्रदेश में विवाह के अवसर पर घर के मुख्य द्वार व 'तोरण कक्ष' को चित्रित किया जाता है। यहाँ इस समय बनने वाले चित्र को 'कौहरा' कहते है। इसका विशेष पारंपरिक महत्व है जो प्रमुखतः विवाह के अवसर पर ही सम्पन्न किया जाता है। कौहरा चित्र मुख्य रूप से दीवार पर बनाया जाता है पर कभी–कभी इसे कपड़े या कागज पर बनाकर भी टांगा जाता है। जिस कमरे में वर–वधु विवाह की रस्मों को निभाते है, उस कमरे की पूर्व की दिशा की दीवार पर यह चित्रण होता है। इसमें विवाह के अवसर पर लग्न से लेकर बारात के जाने तक के विभिन्न कार्यो को क्रमशः चित्रों द्वारा दर्शाया जाता है। जल पूजा, बटना, टीका, तंबोल, वरयात्रा पालकी में वधू और सुखपाल में वर आदि सभी को दृश्य चित्रों द्वारा दिखाया जाता है। परन्तु यहां मूल महत्व उन चित्रों का होता है जो कामदेव और रति की विभिन्न प्रणय मुद्राओं से संबंधित होता है। साथ ही मछली और कुछआ के चित्र भी अंकित होते है जो क्रमशः स्त्री–पुरूष की जनन क्षमता के प्रतीक होते है। वेदी तथा घर के मुख्य द्वार पर तोते और मोर के चित्र भी अंकित होते है। तोते को लोक–कथाओं के अनुसार कामदेव का वाहन और वंशवृद्वि का परिचायक माना जाता है। इसीलिए विवाह के अवसर पर इसके चित्रों का विशेष महत्व है। मोर को सौंदर्य और प्रतिरक्षा का प्रतीक माना जाता है। परंपरा के अनुसार यह कार्तिकेय का वाहन और युद्ध का स्वामी है। इसलिए मोर को मांगलिक चित्रों में अधिक स्थान मिलता है। कौहरा चित्रण प्रायः नायिन (नाई की पत्नी) द्वारा किया जाता है। परन्तु अनेक बार अच्छे कलाकारों द्वारा भी चित्रों को बनवाया जाता है ताकि चित्र और अधिक सुन्दर और आकर्षक बनें। विवाह के समय अनेक रीति रिवाज होते है। बुन्देलखण्ड में भी लोकाचार होते है। जब वर–वधु फेरों से उठते है तब कोहबर की रस्म होती है। यह एक प्रकार से वधू पक्ष वाले वर से अपने पूजा ग्रह में पूजा कराते है। पूजाग्रह में विवाह के समय एक भित्ति चित्र बनाया जाता है। बुन्देलखण्ड में इसे मैहर की पूजा भी कहते है। इस भित्ति चित्र को गेरू से बनाने की परम्परा है। चित्र चौखाने में देवी–देवता का स्वरूप देकर चित्रित किया जाता है। इसमें सूर्य, चन्द्रमा, सातियाँ, चौक, गंगा–यमुना, करवा आदि का चित्रण किया जाता है। चित्रण के समक्ष परिवार के सदस्यों द्वारा भरी गई जल की गगरी होती है। परिवार में इसे 'मैहर भरना' कहा जाता है। विवाह के प्रारम्भ में ही मैहर की पूजा की जाती है। भित्ति चित्रण के समक्ष वर–वधु को ले जाया जाता है। वधु की भाभी पूजा में दो बाती के दिये को वर से एक कराती है। यह वर–वधु के मिलन का प्रतीक माना जाता है। जलती हुई बाती को प्रेम, विश्वास और जीवंतता का प्रतीक माना जाता है। स्त्रियां वर–वधु को कोहबर घर में ले जाते समय एक लोक गीत गाती है–

काँची पितरिया कै इहै नया कोहबर,
इहै नया कोहबर, बाबा कै रचल दमाद।
तेई पइसी सूतैन दुल्हे कवन राजा,
कोरवाँ बहुदारों देइरानि।।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- II, Issues-24, YEAR- April-June-2022

जीवन को सुख–समृद्धि से भरपूरा व खुशहाल रहने के लिए विभिन्न देवी–देवताओं की पूजा का प्रचलन है। इन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु कोहबर–घर में प्रतीकात्मक अंकन होता है। इनमें बनने वाली प्रत्येक आकृतियों का एक प्रतीकात्मक अर्थ होता है। विवाह की बहुत सारी रीतियाँ इसी कोहबर घर में सम्पन्न होती है। कोहबर घर की अपनी एक अनोखी, कलात्मक, सांस्कृतिक परम्परा है।

पूर्वी उत्तर प्रदेश में विवाह के शुभ अवसर पर कोहबर चित्र बनाने की विशेष परम्परा है। इसे वर व वधू दोनों के यहाँ घर के मुख्य द्वार पर व कोहबर घर की दीवार पर बनाया जाता है। लग्न के समय ही नाउन या कहारिन इसे लिखती है। कभी कभी घर की बहू भी इसे बनाती है। कोहबर बनाते समय एक लोकगीत गया जाता है–

हमहूँ जे लिखीला सुहागे कै कोहबर हो
कोहबर लिखाई भइया काऊ देबू नेग जी?
लहँगा पटोला लेवों, झुमका के साथ हो,
सेन्हुरा टिकुलिया लेवो, रूपया के साथ जी।

कोहबर सुहाग के कल्याण के लिए बनाया जाता है। इसमें जीवन की कई अप्रत्यशित झलकियाँ देखने को मिलती है। इससे एक तरफ तो अपनी परंपरा एक संस्कृति का निर्वाह होता है वही दूसरी तरह उत्साह, उमंग और आनन्द का संचार होता है। इसी प्रकार यहाँ कोहबर चित्रण की परंपरा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी हस्तांतरि होती हुई आगे बढती रही है।

अतः कोहबर चित्रण कला का सरलतम् रूप लिये हुए अपने अन्दर एक युग की परम्परा एवं संस्कृति को समेटे हुए है। कोहबर चित्र एक ऐसा चित्र है जिसे देखकर आत्मा प्रसन्न होती है, जिसको बार–बार देखने की अभिलाषा होती है और जिसमें नित्य नये–नये भाव उत्पन्न होते हैं। यही इसकी विशेषता भी है। यह हमारी संस्कृति से ही नहीं वरन् धार्मिक आस्था से भी जोड़ी है।

लोक कला में धार्मिक अभिप्राय– लोक कला जन सामान्य की वह कला है जिसे विभिन्न अवसरों पर चित्रित किया जाता है। धर्म भारतीय जीवन का एक अभिन्न अंग है एवं इसकी प्रबलता लोक संस्कृति की आत्मा है। लोक जीवन में धार्मिक जीवन प्रधान होता है। इसीलिए इनमें अधिकांशतः धार्मिक अभिप्रायों की बहुलता देखने को मिलती है। भारत उत्सवों और पर्वो का देश है। यहां धार्मिक उत्सवों, त्यौहारों, विवाह, जन्मोत्सव आदि अवसरों पर घर की दीवारों एवं भूमि पर मांगलिक चिन्ह प्रतीक एवं भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का प्रतीक स्वरूप है।

भारत में प्राचीन काल से ही रंगोली या चौक पूरने की परम्परा रही है। यह आध्यात्मिक चेतना का प्रतीक है। भारत के विभिन्न प्रान्तों में ये किसी न किसी रूप में बनायी जाती है। हर प्रान्त की लोक कला को हम अलग–अलग नामों से जानते है जैसे मिथिला में अरिपन, राजस्थान में मांडणा, बंगाल व असम में अल्पना, महाराष्ट्र व गुजरात में रंगोली, उत्तर प्रदेश में चौक पूरना, दक्षिण में कोलम। कई प्रान्तों में प्रातःकाल की ईश्वरीय वंदना का आरम्भ रंगोली से किया जाता है। ये अनेक रूपाकार विविध रीति रिवाज और धार्मिक अनुष्ठानों के अनुसार बनाये जाते है जिनके विशेष अर्थ और महत्व होते है। लोक में यह मान्यता है कि इन कृतियों के रूप में घर में देवी–देवताओं का वास रहता है। इसीलिए इन लोक कलाओं में धार्मिकता परिलक्षित होती है।

मिथिला की लोक कलाओं में सर्वप्रधान यहां के लोकचित्र है। यह लोक कला घर की दीवारों की सुन्दरता को भी बढाती है। यह कला मिथिला के गांवों के सैकड़ों वर्षो की संचित अभिव्यक्ति है। इन चित्रों में अलंकरण, पशु–पक्षी, किस्से कहानियाँ के साथ–साथ हिन्दू देवी–देवताओं के चित्र, पौराणिक आख्यान तथा लोक–जीवन के विभिन्न प्रसंगों की रचना होती है। मछली, कुंडलिनी और कमल, मधुबनी कला के कुछ प्रचलित और लोक प्रिय प्रतीक और बिम्ब है। दीवारों के साथ–साथ पूजा, विवाह, यज्ञोपवीत आदि पर्व त्यौहारों पर घर आंगन को अरिपन या अल्पना से सजाने का प्रचलन है। मिथिला की कला में भारतीय अध्यात्म परिलक्षित होता है।

वर्ली, महाराष्ट्र की जनजाति में प्रचलित एक पारम्परिक कला है। इस लोक कला में चित्रित आकृतियाँ प्रागैतिहासिक चित्रों की आकृतियों से साम्य रखती है। इस शैली की मानवाकृतियाँ व पशु आकृतियाँ ज्यामितीय आलेखन जैसे त्रिकोणीय बनी होती है। प्राकृतिक दृश्य, जीव–जन्तुओं के अंकन के साथ–साथ देवी–देवताओं को भी चित्रित किया गया है जो कि ईश्वरीय आस्था व विश्वास के परिचायक हैं। तीज त्यौहार व विवाह सभी धार्मिक अवसरों पर स्त्रियों द्वारा सुंदर व कलात्मक अभिप्रायों से घर को अलंकृत किया जाता है। कोई भी मांगलिक कार्य इस कला के अभाव में अधूरा है।

उत्तरी भारत में भी विभिन्न त्यौहारों पर भित्ति व फर्श को सज्जा करने की प्रथा है। रक्षाबंधन, दशहरा, करवाचौथ आदि पर इससे जुड़ी आकृतियों का प्रतीकात्मक रूपाकार भी विविध रीति–रिवाज और धार्मिक अनुष्ठानों के अनुसार बनाये जाते है।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- II, Issues-24, YEAR- April-June-2022

दीपावली पर लक्ष्मी–गणेश की पारम्परिक या मानवीय रूपाकृतियों के साथ–साथ भिन्न प्रकार से कमल, हाथी, कलश, स्वास्तिक आदि प्रतीक चिन्ह भी अंकित किये जाते है। फर्श पर लक्ष्मी जी के चरण को भी चित्रित किया जाता है। पूजा गृह की बरामदा, मुख्य द्वारा आदि सभी जगह अल्पना बनायी जाती है।

लोक कलाएं हमारी संस्कृति की सच्ची अभिव्यक्ति है। प्रत्येक व्रत, त्योहारों आदि सभी मांगलिक कार्यक्रमों पर लोक कलाओं के भिन्न–भिन्न अभिप्रायों से घर की सुन्दरता में चार चांद लग जाते है तथा साथ ही यह सुख–समृद्वि, सौभाग्य व सम्पन्नता भी लाते है। इन लोक अभिप्रायों को बनाने का उद्देश्य मात्र सौन्दर्य नहीं है अपितु ये अनुष्ठानिक भी होते है। इस प्रकार लोक कलाओं में कलाकार की धार्मिक आस्था उसके प्रत्येक कला अभिप्रायों में दृष्टिगोचर होती है।

आधुनिक कला में लोक कला का योगदान– आधुनिक भारतीय चित्रकला वर्तमान की एक विधा है, जिसमें प्राचीन परम्परा का विरोध और नवीनता का आकर्षण पाया जाता है। किन्तु नवीनता की ओर जाते हुये हमें अपनी संस्कृति की जड़ों तथा इस धरोहर से बहुत कुछ सीखने की आवश्यकता है। यदि हमें कल से आज और आज से कल की ओर जाना है तो हम अपनी सांस्कृतिक विरासत से बहुत कुछ ले सकते है। यह बात लोक कला अभिप्रायों पर भी लागू होती है। कला में नवीनता लाने के लिये यह आवश्यक है कि हम अपनी लोक कलाओं से जुडे रहे। हमें इन लोक कलाओं का सम्मान करते हुए इनमें व्याप्त भिन्न अभिप्रायों को ग्रहण कर आधुनिक कला की ओर बढ़ना चाहिये।

भारत के अनेक कलाकारों ने समृद्ध एवं विस्तृत लोककला परम्पराओं से प्रेरणा ली है। लोक कला की परंपरा में रेखा तथा रंग की निरंतरता प्रतिबिंबित होती है, जो भारत की अपनी विशिष्टता है। यह एकता तथा निरंतरता आध्यात्मिक आंतरिकता का प्रतिनिधित्व करता है। भारतीय कलाकारों की रूचि ऐसे अनुभव में रहती है जो जीवन तथा आत्मा को जोडे रहे। शायद इसीलिए लोककला भारतीय कलाकारों के आकर्षण का केन्द्र बन गया। अनेक आधुनिक चित्रकारों ने भारतीय चित्रकला के मूल रूप की ओर पुनः लौटने का प्रयास किया और यह श्रेय यामिनी रांजन राय को जाता है।

यामिनी राय ने लोक कलाओं को आधार बनाकर भारतीय कलाओं को नवीन जीवन प्रदान किया। लोक कला से प्रेरणा प्राप्त करने के लिए उन्होंने गांवों का भ्रमण किया और निर्मित रूपाकारों को देखा व समझे के पश्चात् ही उन्होंने रेखांकन आरम्भर किया। यामिनी राय ने अपने चित्रों में लोक कला के अभिप्रायों तथा प्रतीकों का नवीन संयोजन कर अनेक प्रयोग किये। इन्होंने ही सर्वप्रथम परम्परागत भारतीय लोककलाओं का प्रयोग कर युवा कलाकारों को भारतीय धारा से जोडने का प्रयास किया है। इन्होंने ही भारतीय कलाकारों के समक्ष लोक कला को एक सशक्त एवं उपयुक्त माध्यम के रूप में प्रस्तुत किया।

यामिनी राय के बाद शीला ओडेन का नाम आता है। इन्होंने यामिनी राय के निर्देशन में बंगाल की लोक कलाओं को समस्त तत्वों को आत्मसात् कर अपनी कला में सादगी निरछलता एवं जीवन के उल्लास को परिलक्षित किया।

अपनी परंपरागत लोक कलाओं की समृद्वि का अनुकरण करने में बंगाल के बाद आन्ध्र प्रदेश के कलाकारों का नाम आता है। इसमें ए0 पैडिराजू की कला पर लेपाक्षि देवालय तथा प्राचीन बोब्बिलि, विजयनगर एवं श्रिकाकुलम के लोक कलाकारों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। यहां के दूसरे कलाकार के0 श्रीनिवासुलु है जो ग्रामीण जनजीवन से प्रभावित है। उनकी भावाभिव्यक्ति सहज, सरल, पुष्ट एवं प्रवाहमयी रेखाओं से पूर्ण है। लोक जीवन के प्रिया रंग, सरल रेखांकन तथा सुकोमल भावनाओं का चित्रण पी0एल0 नरसिंहमूर्ति की विशेषता है।

यद्यपि मकबूल फिदा हुसैन के अनेक चित्रों में लोक कला की सहजता, भावुकता तथा सादगी दिखाई देती है। साथ ही सान्याल, शिवाक्स चावडा आदि अनेक कलाकारों की कृतियों में रेखा की प्रमुखता दिखायी देती है। के0सी0 पणिक्कर, जिनकी कला मूलतः अमूर्त है। ये रैखिक डिजाइन से जुडे हुये थे और अपनी कृतियों के रंग–खंडों में हस्तलिपि, प्रतीकों व ज्यामिति का प्रयोग करते है। बद्री नारायण मोटी रेखाओं के प्रयोग के कारण विशिष्ट है।

इस प्रकार हम देखते है कि भारत के अनेक आधुनिक कलाकार लोक कला से प्रेरणा लेकर उनका प्रयोग अपनी कला में कर रहे है। आज लोक कला से प्राप्त अभिप्रायों को सांस्कृतिक कला रूपों में समाविष्ट करने का चलन सा हो गया है।

बांस शिल्प अब अत्यधिक प्रचलित व विकसित हो गया है अपनी परम्परिकता से थोडा हटकर बांस कला ने एक नया कीर्तिमान स्थापित कर लिया है। बांस द्वारा उपयोगी एवं प्रदर्शनीय वस्तुओं का निर्माण किया जा रहा है। आज बांस की सीकों से विभिन्न प्रकार की कलात्मक वस्तुयें निर्मित की जाती है। जैसे– पेन स्टैण्ड, पर्स, सामान रखने का स्टैण्ड, बैग, पंखा, लैम्प शेड, मयूर, ट्रे, फूलदान, फाइयों आदि सामान की साज–सज्जा में जनजातिय जीवन की झांकियों की स्पष्ट झलक दृष्टिगोचर होती है। उपयोगिता के साथ सौन्दर्य का ऐसा समन्वय शायद ही किसी अन्य शिल्प में दिखायी देता हो।

गुदना महिलाओं का प्रमुख श्रृंगार है। आधुनिक समय में गोदने का स्थान टैटू के रूप में प्रचलित हो गया है। समय, उत्सव के अनुरूप ही टैटू को बनवाया जाता है। आज टैटू आधुनिकता की पहचान बन गया है। टैटू के ये अभिप्राय गुदना

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- II, Issues-24, YEAR- April-June-2022

अलंकरणों के समान ही प्रकृति, पक्षी तथा ज्यामितिय रूपाकार लिये हुये है। आज कल बाजार में तैयार टैटू भी मिलते है। महानगरों से अनेकानेक अत्याधुनिक टैटू पार्लर भी खुल गये है। जहां फिल्म स्टारों से लेकर आम जनता भी टैटू बनवा सकती है। यह कार्य प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। ग्राहक द्वारा पसन्द किये गये डिजाइन की सर्वप्रथम बाहरी रेखायें बनायी जाती है तत्पश्चात् इसके भीतर रंग भरे जाते है तथा छाया प्रकाश का प्रभाव भी दर्शाया जाता है।

मेंहदी का प्रचलन आधुनिक समाज में अपने पूर्ववत् तथा नवीनीकृत दोनों ही रूपों में आज भी उतना ही प्रिय है। लोक कला की इस विद्या ने व्यवसायिक रूप अधिक ग्रहण कर लिया है। आजकल कलरफुल मेंहदी का प्रचलन भी बढ गया है। आज हाथों की इस सज्जा को अनोखा रूप प्रदान कराने के लिए महिलायें ऊँचे से ऊँचा दम भी देने को तत्पर हो जाती है।

इस प्रकार हम देखते है कि लोक कला अभिप्रायों का न सिर्फ चित्रकार वरन् व्यवसायिक लोक से जुड़े विभिन्न कलाकार भी कर रहे है। आज आधुनिक से आधुनिक मनुष्य भी बाजार में बिक रहे इन लोक कला रूपों से आकर्षित हो इन्हें खरीद लेते है। देखा जाये तो लोक कला रूपों का नवनीकरण उचित ही है क्योंकि यह परिवर्तन इन लोक रूपों के प्रति आकर्षण समाप्त नहीं होने देते।

निष्कर्ष– लोक संस्कृति एक व्यापक शब्द है। यह जन–जीवन के प्रत्येक पहलू में है। मानव का भूत भविष्य और वर्तमान सभी लोक संस्कृति से आबद्ध है। इसमें जन सामान्य के आदर्श, विश्वास, रीति–रिवाज एवं लोक मूल्य भी सम्मिलित है। वर्तमान तक लोक कला की एक भी ऐसी परिभाषा नहीं बन पायी जो अपने में पूर्ण हो। सम्भवतः लोक कला सम्पूर्ण मानव जीवन को प्रभावित करने वाले रूप हैं। इस परम्परा को शब्द में बांधना असम्भव है। लोक कला मानव जीवन पर आच्छादित वह मंगल भाव है जिसका प्रदर्शन चित्रांकन के माध्यम से किया जाता है। लोक चित्रकला अपने परिवार व समाज के लिये उत्पन्न कल्याणकारी भावों का आत्मस्पंदित मूक प्रदर्शक है जो शरीर आत्मा और ब्रहम को एकाकार कर देती है। लोक कला अपनी ख्याति की अपेक्षा किये बिना हमारे परिवारिक सांस्कृतिक एवं धार्मिक जीवन की परम्पराओं के साथ सम्बद्ध होकर हमारे बौद्धिक धरातल को स्पर्श किये बिना हमारे आंगन में पलती हुयी आगे बढी। लोक कला परम्परा और विश्वास का अनोखा संगम है। समाज में सदैव धर्म की प्रधानता रही है। धर्म के प्रभाव से सत्य–असत्य, शुभ–अशुभ आदि का ज्ञान होता। जीवन मूल्यों की स्पष्टीकरण एवं अभिव्यक्ति ही लोक कला हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सम्पादक–रानी, डॉ0 अर्चना :: कला का धार्मिक संलयनः विजुएल आर्ट, ड्राईंग एवं पेण्टिंग विभाग (शोध केन्द्र) रघुनाथ गर्ल्स (पी0जी0) कॉलिज, मेरठ, उ0प्र0–2020.
2. मागो, प्राण नाथ :: भारत की समकालीन कला एक परिप्रेक्ष्यः नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया– 2006.
3. 'अशोक', अग्रवाल, किशोर, डा0 गिर्राज :: कला निबन्ध : संजय पब्लिकेशन्स आगरा–2012.
4. कला त्रैमासिक विशेषांकः लोक जीवन में कलाः: राज्य ललित कला अकादमी, उ0प्र0, जुलाई–सितम्बर 2006.
5. ठाकुर, मौलू राम :: हिमाचल की लोक कलाएं और आस्थाएंः राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारतः 2014.
6. जिनदास, जैन :: भारतीय चित्रकला का आलोचनात्मक अध्ययनः
7. तिवारी, डा0 अलका :: कला विविधाः मानसी प्रकाशन : मेरठ– 2015.
8. गुप्ता, डा0 नीलिमा :: भारतीय लोक कला (छत्तीसगढ़ के संदर्भ में): स्वाति पब्लिकेशन्स, दिल्ली–2010.
9. कश्यप, कृष्ण कुमार/श्रीमती शशिबाला :: मिथिला लोकचित्रः राष्ट्रपुस्तक न्याय, भारतः 2017.
10. श्रीवास्तव, पूर्णिमा :: लोकगीतों में समाजः मंगल प्रकाशन, जयपुर।
11. https://www.exoticindiaart.com/details.
12. folkartopedia.com.
13. jharkhandculture.com.

*****